आचारांग सूत्र

— सुरेंद्र बोथरा

आचारांग सूत्र वह ग्रंथ है, जिसमें अर्हंत महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा की तर्कसंगत परिभाषा की आधारभूत अवधारणा का स्पष्ट और प्राचीनतम रूप ही नहीं, उसकी व्यापकता और सार्वभौमिकता स्थापित करने के सशक्त सूत्र उपलब्ध हैं। अहिंसा की आधारशिला रखते हुए उन्होंने कहा ——सर्वप्रथम मनीषियों को अपने—अपने सिद्धांतों में स्थापित करवाकर मैं पूछता हूँ— हे मनीषियों! आपको दुःख प्रिय है या अप्रिय?(4/2/25)

यदि आप कहें, हमें दुःख प्रिय नहीं है, तो आपका सिद्धांत सम्यग् है। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जैसे आपको दुख प्रिय नहीं है, वैसे ही सब प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए दुख अप्रिय, अशांतिजनक और महाभयंकर है। (4/2/26)

मैं कहता हूँ जो अर्हत् अतीत में हुए हैं, वर्तमान में हैं और भविष्य में होंगे वे सब ऐसा आख्यान करते हैं, ऐसा भाषण करते हैं, ऐसा प्रज्ञापन करते हैं और ऐसा प्ररूपण करते हैं ——किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन नहीं करना चाहिए, उन पर शासन नहीं करना चाहिए, उन्हें दास नहीं बनाना चाहिए, उन्हें परिताप नहीं देना चाहिए, उनका प्राण—विनियोजन नहीं करना चाहिए। (4/1/1)

यह अहिंसा धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। आत्मज्ञ अर्हतों ने लोक को जानकर इसका प्रतिपादन किया। (4/1/2)

जिसे तू हनन योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू परिताप देने योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू दास बनाने योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू मारने योग्य मानता है, वह तू ही है। (5/5/101)

आचारांग में श्रमण के आदर्श आचार का निरूपण किया गया है, जो जनसामान्य के आचरण का भी आधार है। महावीर ने सम्यक् आचार का प्रतिपादन कर प्रकृति एवं समाज में अहिंसा पर आधारित जीवन—शैली का सर्वांगीण विवरण प्रस्तुत किया है।

आचारांग दो श्रुत—स्कंधों में विभक्त है। प्रत्येक श्रुत—स्कंध का अध्ययनों तथा प्रत्येक अध्ययन का उद्देशों या चूलिकाओं में विभाजन है। प्रथम श्रुत—स्कंध में नौ अध्ययन एवं चौंवालीस उद्देश हैं। मूलत, यह गद्य रचना है, जिसमें कहीं—कहीं पद्यांशों का प्रयोग हुआ है।

आचारांग के प्रथम श्रुत—स्कंध में समता, अहिंसा और संयम की साधना का विवेचन है। यह साधना आत्मा (ब्रह्म) की ओर प्रेरित होने से इसका अपरनाम ब्रह्मचर्य भी है।

प्रथम अध्ययन (शस्त्र—परिज्ञा) —— हिंसा के बाह्य और आंतरिक साधनों के स्वरूप का सम्यक् बोध ही इसका विषय है। इस अध्ययन में सात उद्देशक हैं। प्रथम व द्वितीय उद्देशकों में आत्म—अस्तित्व की जिज्ञासा और इस जटिल संसार में निरापद रूप से जीते हुए उचित दिशा में बढ़ने संबंधी उहापोह है। अस्तित्व के साथ ही क्रिया की, और बंधन से अछूते रहने के लिए

विवेक की चर्चा है। इसी विवेक के आधार के रूप में अहिंसा को स्थापित किया गया है। हिंसा के विभिन्न कारणों को सूचित करने के बाद उसके साधन के रूप में शस्त्र परिभाषित किया है। शेष उद्देशकों में क्रमश पृथ्वी, जल आदि व्यक्त–अव्यक्त चेतना वाले षट्कायिक जीवों की हिंसा एवं उनकी चेतनता की विवेचना की गई है।

हिंसा से विरत रहने के लिए विवेक और संयम के क्षेत्र की व्यापकता बताते हुए महावीर ने मानव इतिहास में सर्वप्रथम इस दृष्ट जगत से परे सूक्ष्म जीवन की अवधारणा को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया है। महावीर का षड्जीव निकाय का यह भौतिक सिद्धांत आचारांग के इसी प्रथम अध्ययन में उपलब्ध है। पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि तत्त्वों पर आधारित और पोषित सूक्ष्म जीवों के चैतन्य और उनके प्राणों की वेदना को मानवीय अनुभूति के आधार पर मार्मिक शब्दों में पारिभाषित और स्थापित किया है।

महावीर कहते हैं –– पृथ्वीकायिक जीव (और उसी प्रकार जल, वायु, अग्नि और वनस्पति कायिक भी) जन्मना इंद्रिय–विकल –– अंध, बधिर, मूक, पंगु और अवयवहीन –– मनुष्य की भांति अव्यक्त चेतना वाले होते हैं। शस्त्र से भेदन–छेदन करने पर जैसे जन्मना इंद्रिय–विकल अंध मनुष्य को कष्टानुभूति होती है, वैसे ही पृथ्वीकायिक जीवों को होती है। मनुष्य को मूर्च्छित करने या उसका प्राण–वियोजन करने पर उसे कष्टानुभूति होती है, वैसे ही पृथ्वीकायिक जीव को होती है।

यही नहीं वनस्पति जगत की मानव शरीर से तुलना तो अकाट्य प्रमाण के रूप में प्रस्तुत की गई है –– मैं कहता हूँ – यह मनुष्य शरीर भी जन्मता है, यह वनस्पति भी जन्मती है। यह मनुष्य–शरीर भी बढ़ता है, यह वनस्पति भी बढ़ती है। यह मनुष्य–शरीर भी चैतन्ययुक्त है, यह वनस्पति भी चैतन्ययुक्त है। यह मनुष्य–शरीर भी छिन्न होने पर म्लान होता है, यह वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान होती है। यह मनुष्य–शरीर भी आहार करता है, यह वनस्पति भी आहार करती है। यह मनुष्य–शरीर भी अनित्य है, यह वनस्पति भी अनित्य है। यह मनुष्य–शरीर भी अशाश्वत है, यह वनस्पति भी अशाश्वत है। यह मनुष्य–शरीर भी उपचित और अपचित होता है, यह वनस्पति भी उपचित और अपचित होती है। यह मनुष्य–शरीर भी विविध अवस्थाओं को प्राप्त होता है, यह वनस्पति भी विविध अवस्थाओं को प्राप्त होती है। (1/6/118)

इस प्रकार, अहिंसा के तात्त्विक चिंतन के तार्किक आधार को मानवीय संवेदना के धरातल पर स्थापित कर, व्यवहार शुद्धि और आत्म शुद्धि के साधन के रूप में प्रस्तुत करने का प्रथम सफल प्रयास इस अध्ययन में दृष्टिगोचर होता है।

द्वितीय अध्ययन (लोकविजय) में संसार (बंधन) पर विजय प्राप्त करने के साधनों का वर्णन है, जिनमें मुख्य हैं –– संयम में पुरुषार्थ, अंतरंग शत्रुओं पर विजय और अप्रमत्तता। इसमें छ उद्देशक हैं।

तृतीय अध्ययन (शीतोष्णीय) में अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में तनिक भी विचलित न होने और समत्वभाव रखते हुए साधना में निरंतर सजग रहने की चर्चा है। इस अध्ययन में चार उद्देशक हैं।

चतुर्थ अध्ययन (सम्यक्त्व) के अनुसार जीव–अजीव तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप पर श्रद्धा होने से आत्मा प्राणि–मात्र को आत्मोपम्यदृष्टि से देखता है और उनका अहित नहीं करता, उन्हें पीड़ा नहीं पहुंचाता। यह अध्ययन अहिंसा की इस भावना को ही शुद्ध, नित्य और सनातन धर्म के रूप में प्रतिपादित करता है। इस अध्ययन में चार उद्देशक हैं।

पाँचवां अध्ययन (लोकसार) यह बताता है कि लोक का सार धर्म है, धर्म का सार ज्ञान है, ज्ञान का सार संयम और संयम का सार मोक्ष है। इस अध्ययन में छ उद्देशक हैं।

छठे अध्ययन (धूत) में राग–द्वेष आदि मानसिक विकार या अशुद्धि को दूर कर आत्म–शुद्धि करने का स्पष्ट निर्देश है। इस अध्ययन में पाँच उद्देशक हैं।

सातवां अध्ययन महापरिज्ञा है। वर्तमान में यह अध्ययन अनुपलब्ध है।

आठवें अध्ययन (विमोक्ष) में आठ उद्देशक हैं। इनमें विशेषतः श्रमण के दैनंदिन आचार और शुद्ध समाधि की ओर प्रेरित त्यागमय जीवन का वर्णन हुआ है।

नवें अध्ययन (उपधानश्रुत) में भगवान महावीर के साधना काल का सबसे मार्मिक, प्रेरणास्पद, प्राचीन और प्रामाणिक वर्णन है।

द्वितीय श्रुतस्कंध (परिशिष्टात्मक) में श्रमण आचार के नियमों का पर्याप्त स्पष्टता एवं विस्तार के साथ विवेचन हुआ है तथा तप–ध्यान और समभाव की साधना एवं मानसिक शुद्धि के उपाय बताए गए हैं। द्वितीय श्रुत–स्कंध में तीन चूलिकाएं हैं, जो 16 अध्ययनों में विभाजित हैं। द्वितीय श्रुत–स्कंध में श्रमण के लिए निर्देशित व्रतों व तत्संबद्ध भावनाओं का स्वरूप भिक्षु–चर्या, आहार–पान–शुद्धि, शय्या–संस्तरण–ग्रहण, विहार–चर्या, चातुर्मास्य–प्रवास, भाषा, वस्त्र, पात्र, आदि उपकरण, मल–मूल–विसर्जन आदि के संबंध में नियम–उपनियम आदि का विवेचन किया गया है।

आचारांग श्वेतांबर मान्यता के अनुसार भगवान महावीर के उपदेश के गणधरों द्वारा संकलित बारह अंग–शास्त्रों (श्रुत अथवा गणिपिटक) का प्रथम अंग है। इसका प्रथम श्रुत–स्कंध अशोककालीन प्राकृत अभिलेखों से भी प्राचीन है। आचारांग की सूत्रात्मक शैली उसे उपनिषदों का निकटवर्ती और स्वयं भगवान महावीर की वाणी होने की ओर इंगित करती है। भाव, भाषा और शैली तीनों के आधार पर यह सम्पूर्ण पालि और प्राकृत साहित्य में प्राचीनतम है। जर्मनी के प्रसिद्ध भारतीय–विद्या–वेत्ता डॉ० हेरमान याकोबी ने भी इसका काल निर्धारण करते हुए, छंद आदि की दृष्टि से अध्ययन करके, यह निश्चय किया था कि आचारांग के प्राचीन अंश ई०पू० चौथी शताब्दी के अंत से लेकर ई०पू० तीसरी शताब्दी के प्रारंभ से प्राचीन नहीं लगते। उसके द्वितीय श्रुत–स्कंध के रूप में जो आचारचूला जोड़ी गई है, वह ई०पू० दूसरी या प्रथम शती से परवर्ती नहीं है।

आचारांग वास्तव में द्वादशांगात्मक वाङ्मय में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और संपूर्ण जैन आचार का प्रतिनिधि ग्रंथ है। आचारांग पर आचार्य भद्रबाहु द्वारा निर्युक्ति, श्री जिनदासगणि द्वारा चूर्णि, श्री शीलांकाचार्य द्वारा टीका तथा श्री जिनहंस द्वारा दीपिका की रचना की गई। जैन वाङमय के प्रख्यात अध्येता डॉ० हेरमान याकोबी ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया तथा इसकी गवेषणापूर्ण प्रस्तावना लिखी। आचारांग के प्रथम श्रुत–स्कंध का प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रो० वाल्टर शूब्रिंग ने संपादन किया तथा सन् 1910 ई० में लिप्ज़िग से इसका प्रकाशन किया। आधुनिक विद्वानों ने भी इस शास्त्र पर विभिन्न भाषाओं में प्रचुर कार्य किया है और कर रहे हैं।

❑❑❑